REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 6 | MARCH - 2019

# हिंदी काव्य में प्रेम-तत्त्व

**प्रा. सौ. अल्पना हिरालाल कु-हाडे**
**शोध-छात्रा**

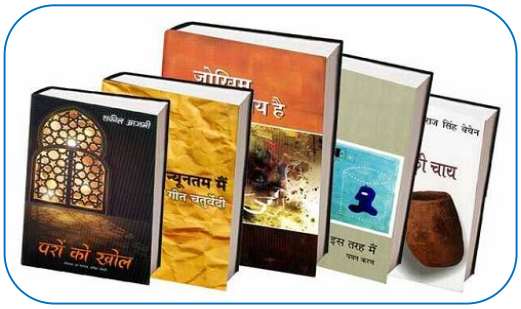


आधुनिक युग विज्ञान का युग है और प्रत्येक बात की व्याख्या इस युग में वैज्ञानिक ढंग से की जाती है। फलतः सत्य, शील, सौंदर्य तथा औदार्य प्रभूति मानवीय गुणों की ही भाँति, प्रेम भी विज्ञान-वेत्ताओं के अन्वेषण का एक प्रधान विषय बन चुका है और उन्होंने इसके संबंध में अपने-अपने विचार भी प्रकट किये हैं। भारतीय चिंतन में प्रेम को अत्यंत उच्च स्थान दिया गया है। वैदिक काल से लेकर आजतक उसे सामान्यतः 'सेक्स' का पर्याय न समझकर मानवीय कोमल भावनाओं के स्वस्थ रूप के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जात रहा है।

- **प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति :-**

'प्रेम' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्री' धातु से हुई है। इसका अर्थ प्रसन्न करना है। सूर्य जैसे शब्दों में मिलनेवाला 'य' प्रत्यय 'प्री' धातु के साथ मिलकर विशेषण की व्यत्पत्ति करता है। प्रिय का भाव प्रेम है। वैसे 'प्रेम' शब्द एक व्यापक भावना का प्रतिनिधित्व करता है। कोशों में इसके हर्ष से संबंधित अर्थ भी है और हार्दिक भावना से संबंधित भी। अंग्रेजी शब्द 'लव' का भी अर्थ बहुत व्यापक दिया गया है। वर्तमान में यह स्थिति आयी है कि, प्रेम की व्याख्या किसी भी परिभाषा में बंधने को तैयार नहीं रहीं और प्रेम को अनिर्वचनीय कह दिया गया है। 'प्रेम' आत्मविस्तार का ही एक बदलता हुआ नाम है जिसमें व्यक्तिगत अहं प्रेम के सामने फिका पड जाता है।

- **प्रेम का रूप :-**

प्रेम के रूप और उपरूपों को मिलाकर डॉ. रामेश्वरलाल 'तरुण' ने प्रेम के बारह रूप दिये हैं- ईश्वरविषयक, कांताविषयक, बाल-विषयक, प्रकृति विषयक, मित्र विषयक, श्रध्दा-विषयक, सेव्य-सेवक विषयक, सूक्ष्म-विषयक, पदार्थ अथवा स्थूल विषयक। वैसे तो प्रेम के रूपों का वर्गीकरण प्रेम की प्रकृति को देखते ही करना चाहिए। लौकिक और अलौकिक का प्रश्न बिना उठाए ही प्रेम के रूपों का वर्गीकरण किया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक प्रेम का रूप लौकिक-अलौकिक दोनों ही हो सकता है। कदाचित प्रेम के देवता को भी अनेक रूप-रूपात मानना अतिशयोक्ति न होगी। तनिक भी विचार करने पर यह दिन के उजाले-सा स्पष्ट हो जाएगा कि, लालसा और कामना, आकर्षण और मोह, भक्ति ओर श्रध्दा सब प्रेम-तत्व के विभिन्न रूप है। कहीं यह रूपासक्ति है, तो कहीं सर्वस्व समर्पण।

- **साहित्य में प्रेम-तत्त्व :-**

**'पोथी पढी पढी जग मुआ, पंडित भय न कोय।**
**ढाई आखर प्रेम का, पढै सो, पंडित होय।'**

अर्थात केवल पोथी पढने से नहीं, प्रेम को पढने या समझने से मनुष्य पंडित होता है। साहित्य में प्रेम की महत्ता समझाने के लिए कबीर का प्रस्तुत दोहा अपने आप में परिपूर्ण है।

साहित्य जीवन का दर्पण है और प्रेम जीवन की मूलशक्ति। यही कारण है कि, विश्वसाहित्य में युग की हर करवट संस्कृतियों का प्रत्येक उतार-चढाव, मान की समस्त जय-पराजयों का इतिहास अंकित हो उठता है। प्रेम का माध्यम साहित्य का सबसे सशक्त माध्यम रहा है।

नमक के बिना षट्रस-व्यंजन व्यर्थ है और प्रेमभावना के बिना साहित्य। अगर साहित्य में से प्रेम का बहिष्कार कर दिया जाए तो जो बचेगा वह कदाचित शून्य के निकट ही होगा।

- **काव्य में प्रेम-तत्त्व :-**

काव्य साहित्य का सबसे कोमल एवं स्निग्ध अंग रहा है। काव्य ने युग-युग से रस स्त्रोत बहाये है, पराग और सौरभ बिखेरा है, आनन्द के उन अनिर्वचनीय कणों की सृष्टी की है, जो मानव की अमूल्य निधी है और प्रेम मान की कोमलतम् एवम् स्निग्धतम् प्रवृत्ति। अत: जीवन की प्रेरणा- शक्ति, मानव अस्तित्व का मूलाधार होने के कारण 'प्रेम' सहज ही साहित्य के सबसे सशक्त अंग 'काव्य' से गठबंधन कर बैठा। काव्य और प्रेमभावना का वहीं संबंध है, जो हृदय और उसकी धडकनों का होता है। कौन-सा ऐसा अमर काव्य है, जो प्रेम के स्वरों के बिना अमर हो गूंज सका है।

- **हिंदी- काव्य में प्रेम-तत्त्व :-**

हिंदी-काव्य की रचना का आरंभ भारतीय इतिहास के मध्ययुग में हुआ था। उस समय सामंती परंपरा का प्रचार था और धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात भी क्रमश: होता जा रहा था। इससे पूर्व के साहित्य में प्रेम की सामाजिक संवेदना का सर्वधा अभाव तो नहीं पर वैयक्तिक संवेदनाओं से प्रेम-तत्त्व को ही प्रश्रय मिला था।

- **आदिकालीन काव्य में प्रेम-तत्त्व :-**

हिंदी के आदिकालीन साहित्य के मूल में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से संस्कृत साहित्य की प्रेम-दृष्टि ही निहित है। लौकिक संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि, व्यास एवं कालिदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने प्राय: व्यापक मानवीय संबंधों एवं भावनाओं पर आधारित मातृ-प्रेम, दाम्पत्य एवं दाम्पत्येतर प्रेम तथा ईश्वर-प्रेम के संतुलित स्वरूप की अवहेलना की और नारी पुरूष के शृंगारिक संबंधों को एकांगी रूप में अपनी रचनाओं का आधार बनाया। लौकिक संस्कृत साहित्य के साथ-साथ विकसित होनेवाली प्राकृत भाषा की आरंभिक रचनाओं में बौद्ध एवं जैनधर्म से प्रेरित अभिव्यक्तियों का बाहुल्य रहा। ईसा पूर्व रचित बौद्ध-पुस्तकों में प्रेम-तत्त्व है, यह साहित्य तांत्रिक रचनाकारों द्वारा रचित है, जिसका स्वरूप कामशास्त्र जैसा ही है। अपभ्रंश साहित्य में लोक-कवियों की रचनाओं का भी बहुत महत्त्व रहा। रासो-साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है, इतिहास कम लेकिन चटपटी और मसालेदार प्रेम-कहानियाँ ही अधिक मात्रा में रही। फिर भी अब्दुर्रहमान कृत 'संदेशरासक' प्रबंधात्मक शैली में रचित की एक अत्यंत धार्मिक कृति है। हिंदी के सूफी कवियों में कुछ ऐसे भी थे। जिन्होंने फुटकर काव्य-रचनाओं के द्वारा प्रेम व्यक्त किया। अमीर खुसरों ने कुछ ऐसे पद्य लिखे थे, जिनमें दांपत्य भाव की अभिव्यक्ति थी। एक पद में कहते हैं-

**'सुसरू रैन सोहाग की जागी पी के संग**
**तन मेरो मन पीक को दोक भये एक रंग।'**

इसी समय विद्यापति का अर्विभाव हुआ और उन्होंने दांपत्य एवं दांपत्येतर दोनों ही प्रेम-प्रकारों को अपनी प्रतिभा एवं संवेदना के स्पर्श से परिपूर्णता की सीमा तक पहुँचा दिया। 'पदावली' में निहित प्रेम-संवेदना की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है, उनके मूल में कार्यरत मनोवैज्ञानिक दृष्टि। वस्तुत: कालिदास, शुद्रक, दण्डी जैसे सशक्त संस्कृत कवियों के बाद विद्यापति संभवत: प्रथम कवि थे, जिन्होंने प्रेम-चित्रण को पुन: एक बार उस गहराई एवं सामाजिकता से युक्त करने में सफलता पाई। जैसे-

**"माधव, धनि आएलि कत भाँति। प्रेम हेम परखाओल कसौटी, भादव कुहू तिथि राति।"**

जिससे प्रतीत होता है कि वह प्रेमिका उनके यहाँ चोरी-चोरी पहुँचना चाहती है। विद्यापति के अनुसार प्रेम की गति अनिवार्य होती है।

- **भक्तिकालीन काव्य में प्रेम-तत्त्व :-**

भक्ति-काव्य अपनी प्रेमपरक संतुलित दृष्टि के कारण निस्संदेह हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाएगा। ज्ञान भी भक्ति का ही परिणाम है। कबीर का आलम्बन ज्ञानवाद के प्रभाव से युक्त था, जायसी का सूफीदर्शन प्रेम के प्रभाव से युक्त था। विद्वान तो इस युग का

नामकरण 'प्रेमभावना युग' भी करना चाहते हैं। यदि 'प्रेम' शब्द रूढ है तो 'भक्ति' शब्द भी रूढ है। कबीर की रचनाओं में जिस अलौकिक प्रेम का परिचय मिलता है, उसे उन्होंने कहीं 'नारदी-भक्ति' का नाम दिया है। कबीर कहते हैं-

**"भगति नारदी मगन सरीहा इहि विधि भव तिरि कहैं कबीरा"**

संत नामदेव जी की बात तो कुछ और ही थी अर्थात वे अपने परमात्मा तत्त्व के प्रत्यक्ष दर्शन सर्वत्र करते थे। उनका कहना था-

**"सभु गोविंद है सभु गोविंद है। गोविंद बिनु नहिं कोई।"**

अलौकिक प्रेम के भिन्न-भिन्न भेदों और प्रभेदों तक के उदाहरण हमें पहले भक्तिकाल में ही आकर मिले और बडी प्रचुरता में उपलब्ध हुए। दादु-दयाल जी रचित निम्न पद प्रेम-तत्त्व का सुंदर उदाहरण है-

**"दादु सखर सहज का तामै प्रेम तरंग।**
**तंह मन झुलै आत्मा, अपने साई संग।**
**प्रेम पियासा, रामरस, हमकौं भावै येह।**
**रिधि सिधि मांगै मुकति फल चाहै तिनकौ देत।।"**

अर्थात पहले विरह का आगम होता है, तब उसके अनंतर प्रीति प्रकट होती है और मन के प्रेम-मग्न होने पर मिलन की आशा बहती है।

कृष्णभक्ति शाखा के सूरदास एवं मीराँबाई ने मृदु-मधुर ब्रज को अपनाया, राग-रागिनियों में गीत बाँधे। शृंगार विशेष कर विरह शृंगार को अपनाया। परिणामस्वरूप लोकरक्षक राम की अपेक्षा लोकरंजक कृष्ण की ओर अधिक लोग जुडे। 'दिन दुनी रात चौगुनी' कृष्णभक्ति की वृध्दि हुई। सूरदासजी रचित 'भ्रमरगीत' की कल्पना उनकी अपनी मौलिक देन है। जिसमें गोपियों ने विरह की साधना को स्वीकार नही किया। निर्गुण की तरह वह भी उन्हें अटपटी जान पडती थी। प्रेम की उत्कटता देखते हुए यह कहना उचित ही होगा की, चाहे भावरूप में हो, चाहे सदेह रूप में, जहाँ विरह है वहाँ अद्वैत हो ही नहीं सकता। इसी कारण कबीर के मतानुसार प्रेम की अकथनीयता भी है। गुरूनानक देव भी कबीर की भाँति अद्वैतवाद के समर्थक थे और अपने इष्टदेव को एक ओर अद्वितीय भी कहा करते थे। कबीर कहते है-

**'तू मोहि देखे हौ तोहि देखूं प्रीति परस्पर होई।**
**तू मोहिं देखै तोहि न देखूं, यह मति सब बुधि खोई।।'**

यह तो है कबीर की प्रीति जो उनके होश उडा देती है। जिसे कबीर कहीं ढाई अक्षर प्रेम का कहते हए प्रेम की महत्ता स्पष्ट करते है। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में भी शुध्द प्रेम का बहुत बडा महत्त्व है। कुल मिलाकर कहा जाता है कि, हिंदी के भक्त सूफी एवं संत कवियों ने मिलकर अलौकिक प्रेम की ऐसी सरिता बहाई थी, जिसके सामने शृंगारी कवियों का लौकिक प्रेम बहुत कुछ मंद (क्षीण) पड गया था।

- **रीतिकालीन काव्य में प्रेम-तत्त्व :-**

आदिकाल के पश्चात भक्तिकालीन कबीर, सूर, तुलसी आदि ने प्रेम को सर्वोच्य धरातल पर प्रतिष्ठित करते हुए व्यापक आदान-प्रदान किया। रीतिकाल में आकर प्रेम पुनः नारी के चतुर्दिक चक्कर काटने लगा। फिर भी नारी के प्रति इन कवियों की दृष्टि सामंती रही। यही कारण है कि ये कवि नारी के विरह-चित्रण में भी गांभीर्य का परिचय नहीं दे पाये। रीतिमुक्त कवियों की प्रेम-संबंध धारणा उक्त रीतिबध्द कवियों से भिन्न कोटि की है। इनके प्रेम में उदात्तता हे, इंदियजन्य वासना नहीं। धनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर आदि कवियों की प्रेमव्यंजना इसी कोटि की है। जैसे-

**'अति सुधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।**
**तहाँ साँचे चलै तजि आपनपौ, झुझूके कपटी जे निसांक नहीं।'**

अर्थात अपने पद में घनानन्द कहते है कि, प्रेम का मार्ग अत्यंत सीधा है और वह केवल सीधे-साधे तथा सच्चे हृदयवाले के लिए उपयुक्त है वह इनके लिए है, जो अपनापन का त्याग कर तथा छलकपट भय व संदेह मुक्त होकर ही प्रेम प्राप्ति करता है। रीतिमुक्त कवियों में नागरिदास का नाम उल्लेखनीय है 'ईश्क-चमन' में इन्होंने रसखान की भाँति प्रेम का महत्त्व प्रदर्शित किया है-

**'इश्क उसी की झलक है, क्यों सूरज की धूप।**
**जहाँ इश्क तहँ आपु है कादिर नादिर रूप।।'**

रीतिकाल में राष्ट्रीयता के दर्शन भूषण एवं लाल की कविताओं में होते है। यह एक उल्लेखनीय घटना मानी गई है क्योंकि हिंदी साहित्य में 'राष्ट्रप्रेम' का यह प्रथम उन्मेष था।

- **आधुनिक काल के काव्य में प्रेम-तत्त्व :-**

हिंदी-काव्य में इतिहास का आधुनिक काल का प्रारंभ विक्रम की 19वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते हुआ। आधुनिक काल का प्रारंभ हुआ और बुध्दिवाद की जिज्ञासा जागृत हुई। इसका प्रभाव हिंदी-काव्य पर भी पडा है। इस कारण ही हिंदी-काव्य के प्रेम-विषयक अंग में बहुत कुछ वृध्दि हो गई है। इन कवियों में सर्वप्रथम नाम भारतेंदु हरिश्चंद्र का आता है। सीधे स्वदेश-प्रेम के विषय पर इन्होंने अपने हृदय को तन्मय बना दिया था। भारतेन्दु के प्रेम का आदर्श उनकी 'चद्रांवली' नाटिका में भले प्रकार से लक्षित होता है। इसके बाद द्विवेदी युग में स्वदेश-प्रेम एवं राष्ट्रीय भाववाले काव्य की प्रधानता रही, किन्तु अन्य प्रकार के प्रेम-साहित्य की कमी नहीं थी। लेकिन आधुनिक काल की हिदी कविता अपनी जिस विशेषता के लिए सब से अधिक प्रसिध्द रही है वह उसका छायावादी काव्य है।

छायावादी काव्यधारा का आरम्भ सन 1918 में और अंत सन 1938 में माना जाता है। अपनी बीस साल की छोटी-सी आयु में छायावाद ने तो कमाल कर दिया।

अब लौकिक प्रेम का भी स्वरूप अलौकिक-सा दिखने लगा और उनके अलौकिक प्रेम पर भी भाव-योग का रंग चढ गया जिसने उनकी वर्णन शैली में रहस्यवाद ला दिया। छायावादी कवियों में प्रकृति के सौंदर्य के प्रति प्रबल आकर्षण पाया जाता है। इन कवियों ने प्रकृति के क्रिया-कलापों एवं उसके उपादानों में प्राय: ही अपनी प्रेयसी की झाँकी देखी है। जिसे पश्चिम के लोग बहुधा 'अफलातूनी प्रेम' का नाम देते है। छायावादी प्रेम तो उच्च कोटि का जान पडता है। अपनी एक कविता में सुमित्रानंदन पंत कहते है-

**'विद्या, वैभव, गुण विशिष्टता गुण हो मानव के,**
**जीव प्रेम के बिना किंतु, ये दूषण है दानव के।'**

पंत के अनुसार मानव के मानवपन का सबसे बडा यही एक चिन्ह है। महादेवी वर्मा अपने मन का केंद्रीकरण कर लेना चाहती है और अपनी विकलता को राधा और विरह को आराध्य का रूप देकर द्वैत का अनुभव कर लेना चाहती है। वे कहती है-

**'आकुलता ही आज हो गयी तन्मय राधा,**
**विरह बना आराध्य, द्वैत क्या कैसी बाधा।'**

छायावाद के चार प्रमुख हस्ताक्षर प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा ने अपने काव्य के द्वारा प्रेम और उसके आदर्श का परिचय दिया है।

- **नयी कविता में प्रेम-तत्त्व :-**

नयी कविता से अभिप्राय उस कविता से है, जो छायावाद के बाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के नाम से जानी पहचानी जाती है। वर्तमानकालीन जीवन क्रमश: अधिकाअधिक संघर्षमय होता जा रहा था। नित्यप्रति नई नई राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं खडी होती जा रही थी जिनके कारण कवियों ने अपना दृष्टिकोण बदलना स्वीकार कर लिया। ये सर्वत्र क्रांति देखना चाहते है इसलिए प्रेमियों के पारस्परिक प्रेम-प्रदर्शन में भी इन्हें किसी प्रकार की मर्यादा का पालन सह्य नहीं। वास्तव में यह प्रवृत्ति कुछ पहले से भी आ रही थी और यह संभवत: पश्चिमी साहित्य का प्रभाव पडने के कारण जागृत हुई थी। यहीं बात कवि नवीनजी कहते हैं-

**'यों भुज भर कर हिये लगना है क्या कोई पाप ?'**
और कहीं हरिवंशराय बच्चनजी कहते है-

**'मैं छिपना जानता तो जग मुझे 'साधू' समझता।'**

आजकल की ऐसी कविताओं की भी यदि अंग्रेजी आदि भाषा में पाये जानेवाले काव्यों के मानदंड से देखा जाए तो उपर्युक्त प्रकार के आक्षेपों का समाधान बडी सरलता से हो जाए।

इन में से अनेक रचनाये अलौकिक प्रेम की ओर भी संकेत करती है। नये सुभाषित में व्यंजित बंधुत्व-प्रेम की पृष्ठभूमि में स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक अवस्था है। मानवतावादी कवि दिनकरजी कहते है-

**'सबके प्रति सौभाग्य और बहुतों से रक्खों राम सलाम,**
**मेल जोल थोडे लोगों से, मैत्री किसी एक जन से।'**

इस प्रकार नयी कविता की प्रेम-दृष्टि में भी व्यापकता है। वह किसी वाद विशेष की सीमा में नहीं आती।

## ● उपसंहार :-

प्रेम-तत्त्व ही मानव की आदि और चिरंतन भावना है। मानव के अस्तित्व का आधार प्रेम है। इसी प्रेम-तत्त्व के दर्शन हमें हिंदी काव्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र प्राप्त होते है। बुध्द की करूणा, ईसा का स्नेह गाँधी की अहिंसा सभी का मूलाधार प्रेम है। प्रेम ने मानव संस्कार कर दिया उसके पाशविक दुर्गुणों कमियों और अपराधों को दूर कर मानवता का पाठ पढा उसे देवत्व की और अग्रसर किया। यह ठीक है कि काम ही सृष्टि की सृजन-प्रेरणा है, किन्तु वहीं तो जीवन की सम्पूर्ण दृष्टि नहीं है। अपने यहाँ भगवान शिवशंकर ने 'कामदेव' को भस्म कर दिया था, ऐसा आत्मयोग विश्वसाहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। बाद में भले ही भगवान शिव भी पार्वतीशंकर हो गये हो, किन्तु यह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति किसी अतींन्द्रिय साधना के आदर्श पर ही सुस्थित है, क्षुद्र देहधारियों की क्षणिक कायिक प्रवृत्तियों पर नहीं। प्रेम ही प्रेम को पहचानता है। जहाँ प्रेम नहीं होता, वहाँ कोई भी व्यवहार अत्याचार जान पडता है।

परमाणु-युग के कारण कविता ही नहीं, संपूर्ण सृष्टि का भविष्य अन्धकारमय हो गया है। हमारी आशा इन नवांकुरित तरुण कवियों की ओर है जो अब भी काव्य को प्रेम के सान्निध्य में रसात्मक बनाये हुए है। ऐसी कविताओं से हृदय को ओएसिस की तरह सुख-शान्ति मिलती है। सौ बातों की एक बात जो किया नहीं जाता, हो जाता है, जो है तो केवल ढाई अक्षर की बात लेकीन है अकथनीय,अनिर्वचनीय, असीम, अपार, शब्दातीत, वर्णनातीत। उस प्रेम की गंगा विश्व में निरंतर बहती रहे।

**'प्रेम तुम्हारी जय हो !'**

## संदर्भ - ग्रंथ :-


1) हिंदी काव्यधारा में प्रेम-प्रवाह :- श्री. परशुराम चतुर्वेदी
2) हिंदी काव्य में प्रेम-भावना :- डॉ. रामकुमार खंडेलवाल
3) साफल्य :- श्री. शांतिप्रिय द्विवेदी
4) दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम-चेतना :- डॉ. मधुबाला
5) महादेवी वर्मा- नया मूल्यांकन :- गणपतिचंद्र गुप्ता